सीताराम ❁ ❁ सीताराम ❁ ❁ सीताराम

श्रीमैथिली रमणो विजयते

❁ श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः ❁

❁ श्रीमते भगवते श्रीरामानन्दाचार्याय नमः ❁

श्रीसीताराम-तत्त्व-प्रकाश

नाम-रूप-लीला-धामात्मक

पूर्वार्ध

संग्रहकर्त्ता तथा प्रकाशक
' सीताशरण '

सीताराम ❁ ❁ सीताराम ❁ ❁ सीताराम

❀ ॐ गं गुरवे नमः ❀

❀ श्रीमैथिली रमणो विजयते ❀

❀ श्रीमन्मारुतनन्दनायनमः ❀

❀ श्रीमतेभगवते जगतगुरु श्रीरामानन्दाचार्यायनमः ❀

* श्रीसीताराम-तत्त्वप्रकाश *

नाम, रूप, लीला, धामात्मक--पूर्वार्द्ध

संग्रहकर्ता लेखक एवं प्रकाशक:-

अनन्त श्रीस्वामी अग्रदेवाचार्य वंशावतंश

अनन्त श्रीजानकीशरणजी महाराज "मधुकर"

तच्चरणारविन्द भ्रमर

सीताशरण

श्रीचारुशीला मन्दिर, श्रीचारुशीला बाग, श्रीजानकीघाट,

श्रीअयोध्याजी-फैजाबाद (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण
१०२५ प्रति

माघकृष्ण सप्तमी श्रीरामानन्द जयन्ती
सं० २०३२ वि० सन् १९७६ ई०

न्यौछावर
१५) रु०

मुद्रक :- मनीराम प्रिंटिंग प्रेस, श्रीअयोध्याजी ।

करिये । सासु श्वसुर को अपने माता पिता के समान पूज्य मानकर सद्भावसे आवश्यक सेवा करिये । ननद यदि बड़ी है तो बहिन समान छोटीहै तो पुत्रिवत् प्यार करिये । देवरको पुत्रके समान वात्सल्यपूर्वक शुद्धभाव से दुलार कीजिये । पारिवारिक अन्य सम्बन्धियों या ग्रामवासिनी माताओं के साथ उत्तमव्यवहार करिये । आप नैहर (मइके) में मातापिता की दुलारी बेटी होनेके कारण बहुतही शौकीनीहैं, बहुत खर्चीलीहैं, तो अपने घरकी व्यवस्था देखकर अपना व्यवहार सुधारिये, आपके सासु ससुर एवं पति यथाशक्ति आवश्यक वस्त्र भूषणोंकी व्यवस्था करेंगे ही आप भूषणों के लिये उनके ऊपर नाराज न हो जाइये । नई फइशन की चप्पलें, सारियों, पावडर क्रीम के लिये घरमें कलह न करिये, पतिव्रत धर्मका पालन और पूज्योंका सम्मान करते हुये भगवत् भजनमें जीवन विताना ही आपका परमकर्तव्य है । यदि आप सासु या ससुर हैं, तो अपनी पुत्रवधूको अपनी प्रिय पुत्रीके समान दुलारपूर्वक लालन पालन करिये । अपने लड़केको उल्टीसीधी वातें पढ़ाकर वहू को डाँट फटकार न लगवाइये, उसके ऊपर अविश्वास न करिये,उसकी आवश्यकताओंपर ध्यानदेकर उसके विनाकहे ही पूर्ति कीजिये, उसे फटकारिये नहीं, पुत्र वधू यदि अवोधहैं, उससे वारवार भूल होतीहै, तो आप उसे प्रेमसे समझाइये, सत्शिक्षा दीजिये, किन्तु भूलकरभी उसेगाली न दीजिये, मारिये नहीं, अन्यथा कुछही दिनमें आप का घर पानीपथ का संग्रामस्थल वनजायेगा । किसीदिन आपभी वहूथीं, उसदिन कीयाद कीजिये, आप अपनी बेटो और वहू दोनोंको समानदृष्टि से देखिये तो वहू भी आपको माता मानेगी, अन्यथा कुछही दिनोंमें वह पतिको आपसे विमुख वनाकर आपसे वात भी न बूझेगी । आप अपनी पुत्र वधूसे झगड़ा नहीं कीजिये । कहा गयाहै—झगड़ा नित्य वराइये, झगड़ा बुरी बलाय । दुख उपजै चिन्ता दहैं, झगड़ा में घर जाय ॥ अस्तु सुखसे रहने केलिये वहूको परेशान न करिये । यह तो आप भलीभाँति जानती ही हैं कि एकदिन वहू ही घरकी मलिकिनि वनेगी, तव आपकी क्या दशा होगी ॥ यदि आप छात्र या छात्रा हैं । तो आपको खूब मनलगाकर पढ़ना चाहिये । सिनेमा देखने या क्लव में न जाकर घरेलू कार्यों को करने के वाद निश्चित रूपसे कुछ समय भगवान् का भजन कीर्त्तन सद्-ग्रन्थोंका पठनपाठन करना चाहिये । सारादिन पावडर लनाने, वालसँभालने वाजार में घूमने होटल में न विताइये । कम से कम पैसोंमें अपना खर्च चलाइये, आपको मालूम होना चाहिये कि आपके माता पिता कितना कष्ट सहकर अपना पेट काटकर आपको पैसा देते हैं । आप तितले और तितलियों की भाँति कई प्रकार की फैशन वदलने में समय नष्ट न करके समय का सद्व्यय कीजिये । आपलोग ही देशके कर्णधार वनेंगे ।

अध्ययनकाल में विशेष सुख नहीं खोजना चाहिये । शास्त्रीय सिद्धान्तहै कि-सुखार्थिना कुतो विद्या, विद्यार्थिना कुतो सुखम् । सुखार्थिना त्यजेत विद्यां, विद्यार्थिना त्यजेत सुखम् ॥ विद्या वहीहै जिसे पढ़कर मानव बनजाये किन्तु जिसे पढ़कर मानवसे दानव बनजाये वह विद्या नहीं अविद्या है । आप अपने पिता माता एवं गुरुजनोंका सम्मान करिये, उनका शासनमानिये, ब्रह्मचर्यका पालन करिये, ब्याहके पूर्व विषयकी चर्चासे भी दूर रहिये ॥

यदि आप अध्यापक प्रोफेसर या प्रिंसपलहैं । तो आपको चाहिये कि आप अपनाजीवन सादा और व्यवहारसरल एवं विचारउत्तम तथा भावनायें शुद्धरखिये । आपके जीवनमें बीड़ी सिग्रेट पान तम्बाकू भंग शराब, जुआइत्यादि दुर्व्यसन नहींहोने चाहिये । आपका जीवन विलासी नहींहोना चाहिये । क्योंकि सहस्रों बालकबालिकायें आपकी नकल करके रसातलको चलेजायेंगे । उनके जीवनका उत्तरदायित्व आपपरहै । आप छात्र एवं छात्राओंको अपने लड़के लड़की समझकर शुद्धभावसे व्यवहार कीजिये यदि आप किसी छात्राके साथ अनुचित भाव लातेहैं तो, आपको महानपाप लगेगा, जिसके फलस्वरूप नरककी शैर करनी पड़ेगी । अस्तु आप बालक और बालिकाओं का जीवन निर्दोष एवं उत्तम बनाइये ॥ यदि आप कोई पदाधिकारी हैं, तो आपको उचितहै कि अपने नीचे रहनेवाले व्यक्तिसे सरलता एवं उदारताका व्यवहार करिये । जनताके साथ अन्याय नहीं करिये, यदिआप सिपाही, थानेदार, तहसीलदार, कलक्टर कमिश्नर, गर्वनर, राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री हैं । तो उचित न्याय कीजिये, गरीबोंको नहीं सताइये, नौकरोंको आवश्यकतानुसार उचितवेतन दीजिये । चोरी, डकैती, कतल करनेवालों को उचित दण्ड देना चाहिये । किसी की सिफारिस मानकर या घूस लेकर अपराधी को छोड़ना अन्यायको बढ़ानाहै ।

यदि आप ग्रामपंचायत के सदस्य, प्रधान, सरपंच तथा एम०एले ए० मिनिस्टर अथवा किसी राजनैतिक पार्टीके नेताहैं, तो आपको उचितहै कि पदलोलुपता की ओर ध्यान न देकर कर्तव्यपालन में अधिक उत्साह रखिये । जनताजनार्दन की सेवा का नारा लगाकर उनका गला नहीं घोटिये । चुनाव के समय आप प्रत्येक व्यक्तिके चरण चूमनेको उद्यत होतेहैं । बादमें आप हरेक को पहचानते भी नहीं, यह आपकी भूलहै, इसका सुधारकर आप उचित न्याय कीजिये । किसी व्यक्ति को नौकरी दिलाने या किसी कचहरी से कोई काम करवाने में गरीबों से पैसा नहीं लीजिये । आप किसी के अधिकार को न छीनिये, न किसी का अहित कीजिये । समाजको सेवा करना ही

आपका परमलक्ष्य होना चाहिये ॥ यदि आप व्यापारी हैं, तो भावमें कमी बढ़ी लेकर लीजिये, परन्तु तौल में कम न दीजिये । और दूसरे की वस्तु अधिक नहीं तौल लीजिये । डाँड़ी पसंगा मारना या घी में डालडा या तेल न मिलाइये । जो वस्तु बेचिये उसे शुद्ध दीजिये । आप यह नहीं सोचनाकि अभी खूब पैसा किसीभी प्रकार कमालें बादमें दान करके पापसे मुक्त हो जायेंगे । अन्यायोपार्जित द्रव्यके दानसे लाभ कम होता है । न्यायपूर्वक धन का संग्रह करके धार्मिक कार्यों, परोपकार तथा दीन दुखियों की सेवामें व्यय करिये । मधुमक्खी की भाँति जीवनभर धन जोड़ते जोड़तेही न मरजाइये । सद्कार्यों में व्यय करते रहिये । तुम अन्याय से कमाकर मर जाओगे और लोग मौज उड़ायेंगे । किन्तु नरक तुमको भोगना पड़ेगा । इसलिये न्यायसे धनकमाकर परमार्थ में लगाओ ।

यदि आप राजा महाराजा हैं, तो गरीबोंको मत सताइये । उनकी बहूबेटियों पर कुदृष्टि न डालिये । किसीकी सम्पत्ति पर अनुचित रूपसे अधिकार नहीं जमाइये आप मांस मछली अण्डा नहीं खाइये, और शराब पीकर अपना जीवन नष्ट न कीजिये । यदि आप श्रेष्ठ ब्राह्मणहैं तो आपको नित्य सन्ध्या करनी और ब्रह्मगायत्री का जप अवश्य ही करना चाहिये । बीड़ी तम्बाकू सिगरेट गाँजा भाँग नहीं खानापीना चाहिये । आप शुद्ध सात्विक भोजन भगवान् को अर्पण करके प्रसाद पाइये । मांस मछली अण्डा कभी भी आपको नहीं खाना चाहिये । आप भगवत भक्त और सन्तों को नमस्कार करिये, अपने श्रेष्टता के अभिमान में आकर सन्तों का अपमान नहीं करिये । श्री गोस्वामी जी ने लिखा है कि—नीच नीच सब तरगये सन्तचरण लव-लीन । जातिहिं के अभिमान ते डूबे बहुत कुलीन ॥ तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैन दिनराम । ऊँचोकुल केहि कामको जहाँ न हरिको नाम ॥

यदि आपका जन्म शूद्र परिवारमें हुआहै तो आप अपने को यह न समझिये कि हम भगवत् प्राप्ति नहीं कर सकते । भगवान आपसे घृणा नहीं मानते हैं । आप अभक्ष पदार्थ मांस मछली अंडा नहीं खाइये । प्रभुतो आपके हृदयमें शुद्ध भावको समझते हैं । आप यह चेष्टा न कीजिये कि सभी लोग हमारा छुआ अन्न जल खायें पियें । यदि कोई खाना ही चाहता है तो खिलाइये, यदि सभी लोग आपका छुआ हुआ अन्न पानी खाने पीने लगें तो भी आपको क्या मिला; न खाने पर भी आपकी कुछ हानि नहीं है । ब्राह्मणों का छुआ सभी खाते हैं, क्या ब्राह्मण आकाश में उड़ते हैं । पृथ्वी पर ही रहते हैं । ध्यान रहे मानवमात्र की उन्नति विनम्रता भगवद्भक्ति,

सत्संग, चरित्रवान, सत्यभाषण, परोपकार एवं सद्गुणों से होती है खाने पीने से नहीं। अस्तु आप अपने को नीच न मानकर सत्संग भगवद्भक्ति तथा समाजकी सेवा करिये। भगवान् आपपर कृपाकरेंगे। यदि आप स्वामीहैं तो अपने नौकरोंको व्यर्थमें डाँट फटकार न लगाइये, समयपर उनका वेतन दे दीजिये। उनको नीची दृष्टि से नहीं देखिये। आप यथायोग्य सभीका आदर करिये किसी से भूल होजाने पर उसको दण्ड न देकर उसका सुधार कर दीजिये, आपसे भी तो कभी गल्ती होती ही होगी। तब आप क्या करते हैं। उसीप्रकार आप अन्य लोगों को भी क्षमा करें। यदि आप नौकर हैं तो समय पर मालिक की सेवा करते रहिये, उसका काम बिगड़ने नहीं पाये, उसकी सम्पत्ति को अपनी मानकर रक्षा करिये॥

यदि आप वकील हैं, तो किसी से पैसा नहीं ठगिये। जिसका पैसा लेते हैं उसका काम भी करिये। ध्यान रखना यदिआप अनुचित रूपसे विषय विलास करेंगे तो भगवान् के सामने आपकी कानूनी डायरी काम न आयेगी, वहाँतो सत्यता सच-रित्रता, परोपकार, उदारता और भगवन् भजन ही काम आयेगा। यदि आप डाक्टर हैं दवाई में पानी न मिलाइये, रोगी के रोगको नहीं बढ़ाइये, आपका कर्तव्य समाज की सेवा करना है। खटमल की भाँति जनता का खून चूसना नहीं। दवाई का उचित दाम लीजिये। गरीबों की यथाशक्ति निःशुल्क सेवा करिये। कुमारी बालि-कायें या विधवाओं के गर्भ गिराकर अन्याय अत्याचार को मत बढ़ाइये, अनपढ़ जनता दवाई का दाम नहीं जानती है, आप उसे ठगिये नहीं। यदि आप विद्वानहैं, तो जो भाषा आपको प्रिय या जिसका आपको ज्ञान है, उसके अतिरिक्त भाषाओंकी अवहेलना नहीं करिये। सभी भाषाओं में भगवान् की भक्ति की महिमा है। ध्यान रहे कि सभी विद्याओं का फल नम्रता, सत्यवादिता, उदारता, परोपकारिता और भगवत्भक्ति करनाही है। यदि यह न ही पाया तो विद्वान होनेका अभिमान व्यर्थहै। प्राचीय नीतिकार अप्पयदीक्षित कहते हैं कि—नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपिभवन्ति शास्त्रज्ञाः। ब्रह्मज्ञा अपिलभ्याः स्वाज्ञानज्ञानिनो विरलाः॥ महाभारत में युधिष्ठर जी कहते हैं कि—पाठकः पाठकाश्चैव चान्ये शास्त्र विचिन्तकाः सर्वेव्यसनी मूर्खाश्च यः क्रियावान् स पण्डितः॥ पढ़नेवाले पढ़ानेवाले, शास्त्रों का चिन्तन करनेवाले सब व्यसनी और मूर्ख हैं। पंडित तो वह है जो क्रियावान है। सदाचरण और भगवन् भक्ति सम्पन्न है।

यदि आप किसी के मित्र हैं, तो आपको उचित है कि अपने मित्रके गुणों

को समाज में प्रकाशित करिये और उसके अवगुणों को छिपाइये। उसे अधर्म अन्याय अत्याचार चोरी हिंसा असत्यभाषण से बचाइये। और सत्प्रेरणा देकर धर्मार्थ कार्यों दीनदुखियों की सहायता करने, भगवद्भक्ति करने में प्रवर्त कीजिये। भूल होजाने पर क्षमा करिये, विपत्तिकाल में तन मन धनसे सहायता करिये ॥ ध्यान रहे कि चोर अन्यायी व्यभिचारी मद्यपीनेवले, मांस मछली खानेवाले धोकेबाज व्यक्ति को मित्र न बनाइये। अन्यथा यह सभी दोष आप में आ जायेंगे ॥ यदि आप भगवद्भक्त हैं, तो आपको माया मोहमें लिप्त नहीं होना चाहिये। नित्यहीं सच्चे संतों का संग सद्-ग्रन्थों का स्वाध्याय और भगवद्भजन पूजनही आपका जीवन होना चाहिये। भगवान् को ही अपना रक्षक पालक एवं परमप्रेमास्पद मानना चाहिये। आप संतो को भग-वद्रूप मानकर निष्कपट भावसे सेवा करिये। सत्यका ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये ॥ यदि आप ब्रह्मचारी हैं तो आपको अपने शरीर का श्रृंगार करना वहुत सुन्दर पदारथ सेवन करना, सिनेमा देखना, नाच या नाटक देखना, बाजारों में टहलना, रेडियो सुनना अखबार पढ़ना, उपन्यास या संगीत की पुस्तकें पढ़ना, देवियों से सम्पर्क रखना उचित नहीं है। आपको जनसमुदाय से दूर निर्जन स्थानमें नदी के तट पर शान्त होकर भगवन भजन करना चाहिये। विषयों की चर्चा करना या सुनना उचित या लाभकर नहींहै। लहसुन प्याज खटाई मिर्चा, तेल, गुण इत्यादि का सेवन करना हानिकर है। स्त्रियोंका संग आपके पतनका कारण होगा। आपको शुद्ध सादा सात्विक भोजन करके सद्विचार, सत्संग, सन्तसेवा, और भगवदाराधन में ही तत्पर रहना चाहिये ॥

यदि आप साधकहैं तो आप शरीर निर्वाह के अतिरिक्त कुछ भी सामान या द्रव्य का संचय न करके प्रपंच की वार्ता से दूर रहकर निरंतर अपनी साधना में लगे रहिये। जमीन, पाठशाला, धर्मशाला, वहुत शिष्य बनाना, सुन्दर भोजन का स्वाद लेना आपको उचित नहीं है। आप मौन रहते हैं, पैसा नहीं छूते नंगे रहते हैं। तथापि अभिमान से भरे रहते हैं अन्य संत, विद्वान्, भगवद्भक्तों को कुछ नहीं मानते, स्वयं को ही सबसे अच्छा साधक मानते हैं, तो आप अवश्य ही भूल रहे हैं ॥ यदि आप साधु हैं तो आपको महिलाओं से राग, और ऐकान्तिक सम्पर्क, परनिन्दा, भाँग गाँजा खाना पीना तम्बाकू बीड़ी सिग्रेट का सेवन, पानखाना, वेश-कीमत चमकदार सुन्दर वस्त्र भूषण धारण करना; भूतप्रेतों की सेवा करना, झाड़ना फूँकना, किसीको पुत्र किसीको धन देने का पाखण्ड करना उचित नहीं है। आपतो

भगवत्कृपा का अवलम्ब लेकर अहर्निशि भगवान् का भजन करिये । संसारके उद्धार का ठेका आपका नहीं दिया गया है । यह बात अलग है कि प्रभुकृपा से आपके द्वारा जगतको लाभ होजाये, किन्तुआप इस चक्करमें न रहकर केवल अपने कल्याण करने की साधनामें लगे रहिये । आपको यदि भगवान् दर्शन देदें, तो विना ही प्रयास आपके दर्शन से संसार को लाभ होगा, आप भजन छोड़कर उद्धार करने के फेर में पड़ेंगे तो आपही फसजायें जगत का उद्धार क्या होगा, अस्तु शुद्ध भावसे भगवान् का भजन करिये ।

यदि आप सन्तहैं, तो समस्त संसार में धर्म प्रचार की तृष्णा से व्यस्त न रहिये । आप जहाँ भगवान् का भजन करते हैं वहाँ जो व्यक्ति आपके सम्पर्क में आवे, उसे उचित शिक्षा देना तो आपका स्वभाव ही होना चाहिये । किन्तु आप इस भूल में न पड़िये कि सभी लोग हमारे ही सेवक या शिष्य बन जायें । ध्यान रहे आप ऐसा न सोचिये कि अभी यह कार्य करलें, भविष्यमें स्वरूपास्थित होकर भजन करेंगे । यदि आप मनको भटकायेंगे, तो फिर कभीभी आपकी बात न मानेगा । आप सम्पर्कीय व्यक्ति और वस्तुओंसे आवश्यकतानुसार ही व्यवहार कीजिये, उनमें राग या आशक्त होना ही आपका पतन है । कामक्रोध लोभमोह मदमात्सर्य से अलग रह-कर अनन्यप्रयोजन होकर भगवद्भक्ति करना ही आपको उचित है । यदि आप महान्त है तो आपको उचित है कि अपने स्थान की सम्पत्तिको भगवान् की वस्तु समझकर उसकी रक्षा करते हुये संत और भगवान् तथा अतिथि अभ्यागतों की सेवामें निसं-कोच व्यय करें । यदि आप भगवान् का सुन्दर भोग लगाकर स्वयं प्रसाद पा लेते हैं, अतिथि अभ्यागतों की सेवा नहीं करते तो आप भूल रहे हैं । जिसके पास सेवा करने का साधन नहीं है । वह जैसे भी रहे परन्तु स्थान में सम्पत्ति रहनेपर भी संतों की सेवा से जी चुराना अन्याय एवं पाप है । स्थानमें आनेवाले संतोंको भग-वत् स्वरूप मानकर उनका समादर सत्कार करना ही आपका गौरव है । आप स्थानमें आनेवाले संतों की सेवा करने के लिये महान्त बनाये गये हैं । आप संतोंके सेवकहैं, स्वामी नहीं, तथापि यदि आप सन्तों को अपना सेवक समझते है, उनको उचित सत्कार नहीं करते हैं, उन्हें आयोग्य आलसी समझतेहैं; तो आप निश्चय ही पतन की ओर जा रहे हैं । महान्त शब्द का अर्थ ही है कि माया को हनन करने-वाला अर्थात् मायाके विकार काम क्रोध लोभ मोह मद मत्सर ईर्ष्या दोष को त्यागकर भगवत्पादारविन्द मकरन्द का रसास्वादन करना । आप यदि भगवान् की पूजा,

रसोई बनाना, मन्दिर की स्वच्छता स्वयं करनेमें अपमान समझतेहैं तो आप भूल रहे हैं। ध्यान रहे कि आपको इसीलिये महान्त नहीं बनाया गयाहै कि देरतक सोते रहें, जगनेपर चार सेवक आपकी सेवा करें, मनमाने ढगसे रहकर प्राइवेट भोजन बनवाकर पावें, शरीर को राजकुमार सदृश्य सजाये रहें। सभी पर शासन करते हुये आप ऐश आराम में ही अपना जीवन सफल मानें ॥

यदि आप सद्गुरु हैं, तो आपको उचितहै कि अपने शिष्य को उचित शिक्षा देनेमें संकोच न करें स्पष्ट रूपसे कड़ाशासन करने से ये नाराज हो जायेगा। तो हमारी सेवा नहीं करेगा। इस भयसे आप उसके हितकी बात न कहिये, तो आपकी भारी भूलहै। आप शिष्योंसे रुपया पैसा ठगने (पुजाने) के चक्करमें न पड़िये। यदि सारा संसार आपका शिष्य होजाये, तो आपको क्यादेसकताहै। आपको केवल दो एक वस्त्र पहरकर दो रोटीही खानीहैं। अस्तु आप शिष्य बनानेके फेरमें न पड़िये, यदि कोई विशेष जिज्ञासा करे, तो उदारतापूर्वक लोभ लालच रहित उसके कल्याणार्थ ही दीक्षा दीजिये। ध्यानरहे कि शिष्य और शिष्यायें आपके पुत्र एवं पुत्रीहैं, वात्सल्य पूर्वक दुलारसमेत सत्‌शिक्षादेना तो आपकास्वरूपहीहै। किन्तु यदिआप उनकेप्रति अनुचित भाव करतेहैं, तो श्री राम जी का बाण बालि की भाँति आपका स्वागत करे तो क्या नई या आश्चर्य की बातहै। आप अपने शिष्योंको अपशब्द नहीं कहिये, उनपर व्यंगका शासन नहींकरिये यदिशिष्य आज्ञा न माने तो क्रोध न करके उसकेकल्याण की मंगलकामना प्रभुसे कीजिये। और स्वयं रातदिन भगवत् भजन में लगे रहिये।

यदिआप शिष्यहैं, तो आप अपने सद्गुरु को भगवत्स्वरूप मानकर मनवचन कर्मसे उनकी सेवाकीजिये, आज्ञाओंका पालन करिये। गुरुके उपदेशानुसार ही भगवद्भजन उपासना करिये। आप यह न सोचिये कि सबलोग हमे सिद्धमहात्मा मानें। हमारी पूजाकरें। गुरुके कड़े से कड़े शासनको अपने ऊपर उनकी कृपामानें। आप सद्गुरु की शरीरसे सेवा करिये, मनसे श्रद्धारखिये, वचनसे मधुर प्रियभाषण करिये। गुरुके शरीर की सम्यकप्रकार रक्षाकरना आपका धर्महै। यदि आप कुछ पढ़े लिखे व्यक्तिहैं। इसलिये गुरुकी आज्ञा नहीं मानते, उनसे असत्य व्यवहार करते हैं। गुरुकी सेवा करनेमें आप अपने व्यक्तित्व की हानि समझतेहैं, अपने शिष्य सेवकों के बीचमें आपको गुरुकी पूजा प्रतिष्ठा प्रशंसा करनेमें लाज लगती है। तो चाहे आप लोक में भले ही पागलों के समाजमें समादर पालें, किन्तु भगवान् आपकी सब चालबाजियाँ जानते हैं। वहाँ पर आपकी चारसौ बीसी नहीं चलेगी। अस्तु गुरुआज्ञा मानतेहुये

कामक्रोधादिक विकारोंसे अलग रहकर शुद्ध भावसे प्रेमपूर्वक भगवान् का भजनकरिये। ध्यानरहे गुरुके समान अहेतुकी कृपा करनेवाले भगवान् भी नहींहैं तब अन्य लोगोंकी क्या चर्चा । आप गुरुके दोषोंपर विचार न करें । उनकी निन्दा न करें न सुनें । गुरुनिष्ठ भक्तपर भगवान् शीघ्र ही कृपा करते हैं ।

यदिआप अधिकारी, पुजारी, कोठारी या रसोइया हैं, तो आपको उचित है कि अपना अपना कार्य ठीक समयपर विना कहे ही कर लेवें । अन्य अभ्यागतोंपर आप शासन नहीं जमाइये । यदि किसी सन्तसे कुछ भगवत् कैंकर्य कराना है, तो समझाकर प्रेमसे ले जाइये । यदि कोई सत स्थानीय नियमावली के प्रतिकूल चलते हों, तो उनसे प्रार्थना करिये, न माने तो हाथ जोड़ लीजिये कि भगवन् हमपर कृपा करिये किन्तु आप किसी सन्तको अपशब्द न कहिये, न मारिये । यदि आप अपने अधिकार के अभिमान में आकर सन्तोंको गाली देते मारते डाँटते हैं तो अनेक जन्मोंमें भी भगवान् के प्रिय नहीं हो सकते हैं । अस्तु आप उचित व्यवहार करके भगवान्के भजनपूजनमें ही अपना कल्याण मानिये ॥

यदिआप अभ्यागत सन्तहैं, तो आप जिस स्थानमें रहें उसको अपना स्थान माने । भगवान् की सेवारूप कैंकर्य को उत्साहपूर्वक प्रेमसे करिये । स्थानके श्रीमहान्त अधिकारी पुजारी कोठारी रसोइया इन सबकी आज्ञाको मानिये, स्थानका कैंकर्य इसलिये मत कीजिये कि काम न करेंगे, तो महान्तजी आसन उठादेंगे । अपितु उसे अपना सर्वस्व धन समझिये, समय से उठकर भगवान् का भजन करिये । स्थानीय महान्त अधिकारी पुजारी कोठारी की निन्दा दूसरे सन्तोंसे मतकीजिये । इससेआपको लाभ नहीं हानि होगी । यदि आप किसी महान्त जी या किसी राजकीय पदाधिकारीकी सेवामें नियुक्तहैं, तो आपको चाहिये, कि उनके निकट आनेवालों के साथ साथ सुहृदता का व्यवहार करिये, कोई अपराधी आता है, तो उसको क्षमा करवा दीजिये । उसकी परिस्थिति से स्वामी को अवगत कराइये ।

यदिआप कवि, लेखक एवं प्रवचनकर्ता हैं, तो आपको उचित है कि जिस प्रकार आप समस्त संसारकी अलोचना करते हैं, उसीप्रकार आप अपनी आलोचनाभी करते; आप और सबको तो कर्तव्यकी शिक्षा देतेहैं, परन्तु स्वयं अपने कर्तव्य का ध्याननहीं देते, यह आपकी महान भूल है । ध्यान हे कि यदि आपके कथनीरूपी पौधे इतने बढ़ गये कि जिनमें करनीरूपी फल लग ही नहीं पा रहे हैं, अर्थात् आपको उपदेश देने से अवकाश ही नहीं है तब आप अपना कर्तव्य कब पालन करेंगे । आपकी

कवितामें अपार शिक्षा भरी रहतीहै, किन्तु आप अपनी इन्द्रियोंके दास बने रहतेहैं, तो आप अवश्यही भूल रहेहैं। यदि आप अपने मनमें ऐसा सोचतेहैं कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ लेखक, कवि, प्रवक्ता, विद्वान् हूँ। और सब अबोधहैं, तो आप भूल रहेहैं। विशेष ध्यान दीजिये, यदि आप अपने दोषोंको छिपानेमें परमदक्षहैं, अनेक युक्तियोंसे अपने दोषोंको छिपाये रहतेहैं, और दूसरे लोगोंको नित्यशिक्षा उपदेश देते रहतेहैं। आपके बिगड़नेका (पतन होने का) सबसे प्रधान कारण यहीहै। मानिये कि मैं विरक्तीका डंकापीटता हूँ। और स्वयं अवैधानिक रूपसे छिप छिपकर किसीकी बहू बेटियोंके साथ स्वच्छन्द विहार करताहूँ, तब कहिये कि मेरे समान बुद्धिका दरिद्र संसारमें कौन होगा। अस्तु कवि, लेखक प्रवक्ता रामायणी, व्यास प्रथम अपने सुधारपर ध्यानदें, तभी जगतका सुधार हो सकताहै अन्यथा नहीं। ध्यान रहे कि पुस्तकोंको पढ़कर उनमेंसे संग्रह करके कोई पुस्तक लिखदेना या प्रवचन करदेना ही जीव का परमलक्ष नहींहै। न इससे भगवान् ही मिलते हैं न संसारसे मुक्ति ही हो पातीहै। केवल कुछ समय के लिये लोकमें प्रशंसा प्राप्त होती है। भगवत् प्राप्ति या संसारसे मुक्तितो श्रीसद्गुरु प्रदत्तज्ञानके अनुसार अनन्य प्रयोजन होकर अनन्य भावसे भगवद्भजन उपासना करनेपर ही हो पायेगी अन्यथा नहीं।।

यदि आप प्रेसमालिक हैं, तो आप ग्राहकों का कार्य ठीक समयसे कर दीजिये तो उसका काम हो जायेगा। आपको तुरंत पैसा मिल जायेंगे। यदि आप ऐसा सोचकर कि कहीं दूसरे प्रेस में न चला जाये, उसको फसा लेतेहैं, काम कभी किया कभी नहीं किया इससे ग्राहकको असुविधा और दुख होताहै। आप अपने कर्मचारियों को वेतन कम देतेहैं, अथवा देरसे देतेहैं, तब वह काममें शिथिलता कर देतेहैं, जिससे मालिक तथा ग्राहकसभी को हानि होती है समय व्यर्थ हो जाताहै, अस्तु समयपर वेतन देना चाहिये। यदि आप कम्पोजीटर या मशीनमैंन हैं, तो आप विशेष सावधानी से कार्य करिये, आपके एक क्षण का प्रमाद हजारों लाखों व्यक्तियों को दुखद होगा। जिसका परिणाम तदनुसारही भयंकर होगा। पाठकगण कहेंगे कि पुस्तक छपानेवाला, छापनेवाला, संशोधक सभी अन्धेथे क्या? अस्तु पुस्तकों में सावधानी से कार्य करना अनिवार्य परमावश्यक है।।

यदि आप प्राचीन संस्कृति (वेष भूषा) एवं रूढ़ीके समर्थक हैं, तो आपको रुचि है इसलिये ठीक है। परन्तु नवीन संस्कृति के माननेवालों से घृणा या दोष मत मानिये। कारण यह है कि किसी भी समाज में सभी अच्छे हों अथवा सभी खराब हों ऐसा नहीं होता। सभी समाजोंमें कुछ व्यक्ति उत्तम विचारवान और कुछ निकिष्ट विचार के होते हैं। धर्म किसी भी प्रकार के वेष में आबद्ध न होकर सर्व व्यापक रहता है। नवीन वेष सर्ट पैन्ट टाई लगानेवालों में भी लाखों व्यक्ति धर्म परायण

भगवन् भक्तहैं । उसीप्रकार प्राचीन वेष धोती कुर्त्ता या कमीज पहिरनेवालों में लाखों व्यक्ति धर्मकी बधाई देकर अधर्म अन्याय और पापाचार व्यभिचार परायण हैं । अस्तु व्यक्तिको विना समझे वेषमात्र देखकर किसीको नास्तिक समझना भारी भूलहैं। यदि आप नवीन सभ्यताके प्रचारकहैं, तो आप भी प्राचीन वेष धोती कमीज पहरने वालों को पिछड़ाहुआ ढोंगी, पाखण्डी, न कहने लगिये । आप चोटी यज्ञोपवीत इत्यादि प्राचीन चिन्ह धारण करनेवालों को और सद्ग्रन्थोंका पाठ पूजन करनेवालों को बुद्धू या ठग नहीं मानिये । आप जानते होहैं कि वर्तमान समयमें दूसरेकी निन्दा करके अपनेको श्रेष्ठ बतानेवाले न जाने कितने व्यक्ति धर्मके गीत गा गाकर समाजसे अपना पेट भरतेहैं । खोजने से पता लगेगा कि न जाने कितने नवीन सभ्य गरीब परिवानमें जन्म लेकर धर्मके ठेकेदार बनकर जनता की आँखमें धूलझोंककर बडीबड़ी कोठियाँ बनाकर मौज उड़ा रहेहैं । धर्म प्राचीन या नवीन किसी भी वैषमें नहीं हैं । धर्म तो सत्यतापूर्वक सदाचार करतेहुये अहिंसा क्षमा, दया, विचार, धैर्य, सत्संग, शरीरकी पवित्रता और मनको एकाग्र करके आत्मा परमात्मा का यथार्थ बोधपूर्वक भगवद्भजन उपासना करना है । इन सब सद्वृत्तियों को धारण करनेवाला व्यक्ति प्राचीन सभ्यताके अनुसार धोती कमीज इत्यादि पहरे अथवा पैन्ट सर्ट टाई धारण करे । वे दोनों ही धार्मिक है । इसके विपरीत असत्यवादी, भ्रष्टाचार, व्याभिचार, हिंसा, क्रोध, क्रूरता, अविचारिता, कुसंग, अपवित्रा, चंचलमन, आत्मापरमात्मा ज्ञान रहित भगवद्विमुख व्यक्ति चाहे प्राचीन सभ्यता के गीत गाये, अथवा नवीन सभ्यता का झण्डा उठाये, वे दोनोंव्यक्ति अपने अपने समाजगत भले ही धर्मात्मा माने जायें, वास्तव में दोनों अधर्मी हैं ।

यदि आप अपने को हिन्दू या गोंभक्त मानतेहैं, तो आप अपने बूढ़े बैल, भैंसा, बूढ़ी गायें भैंसे, मत बेचिये, जीवनपर्यंत उनकी सेवा कीजिये । सबसे बड़ेकसाई तो वे लोगहैं जो जान बूझकर अपने पशु कसाई या कसाई के एजेन्टों के हाथ बेचते हैं । यह कौन नहीं जानता है कि कसाई खानेमें पशुओंको मारदिया जाता है । क्या कसाई किसीके पशुओंको उसके खूँटेपर से बलात्कार ले जाकर काट देतेहैं । कसाइयोंको निन्दा करनेवाले धर्मके ठेकेदार कहानेवाले लोग जबतक बैल भैंसे जवानरहते हैं, उनको हलमें जोततेहैं बैलगाड़ी चलातेहैं, गौयें और भैंसियोंका दूध खाते हैं । बूढ़े होनेपर कसाइयोंके हाथ थोड़ेसे पैसोंके लोभमें वेचतेहैं । अपनेको धर्मात्मा या हिन्दू मानेवाले को उचित है कि बूढ़े पशुओंको न बेचें, उनकी सेवा करें ॥

यदि आप साम्प्रदायिक, पन्थी समाजीहैं, तो आपको उचितहै कि आप अपने पंथके प्रचार करनेवाले या प्रवर्तकोंको श्रेष्ठ पूज्यमाने, उनके ग्रन्थोंको आदरसे पढ़ें; उनकी आज्ञानुसार अपनाजीवन निर्माण करें। किन्तु अन्य पंथों समाजों या सम्प्रदायों के प्रवर्तकों एवं प्रचारकोंको सर्वथा अज्ञानी एवं उनके ग्रन्थों को बिलकुल व्यर्थ न कहिये। अपनाधर्म पालनकरना जितना हितकर है। दूसरेकी निन्दा करना उतना ही अहितकर है। किसी भी धर्मावलम्बी को किसीभी धर्मको गलत कहने का कुछभी अधिकार नहींहै। आपकी दृष्टिमें जो धर्महै किसीकी दृष्टिमें वही अधर्म भी होगा। आप जिसे अधर्म कार्य कहतेहैं, उसी को कोई धर्म मानताहै। अस्तु आप अपनी मान्यताके ही आधारपर धर्म अधर्म मानिये। परन्तु दूसरे व्यक्तिके मार्गमें कन्टक न बनिये। समस्त विश्वके मानव आपकी मान्यतानुसार ही धर्म अधर्ममाने, यह आवश्यक या अनिवार्य नहींहै। यदि साराजगत आपकी मान्यानुसार ही धर्माधर्म मानले, और आपको ही धर्मकी व्यवस्था सौंपदी जाये तो आप सुचारुरूपसे सारे संसारकी व्यवस्था करनेमें समर्थ भी नहीं होसकतेहैं, इसलिये आप अपने धर्मको मानिये परन्तु दूसरे धर्मकी निन्दा न कीजिये।

यदि आप मानवहैं, तो आप सभी जीवोंपर दया करिये। शुद्धसात्त्विक आहार पाइये, सभीसे सत्यतापूर्वक स्वार्थरहित उचित व्यवहार कीजिये। यदि आप अपनी कोईभी वस्तु किसीको देना आवश्यक या उचित नहीं समझतेहैं, तो दूसरेकिसी की वस्तुको किसी भी प्रकार लेना अनावश्यक या अनुचित मानिये। आप परिश्रम करके धन उपार्जनकरके सुखानुभव करिये, चोरी करना अनुचित अन्याय, अनैतिकता एवं महान पापहै। यदि आप अपनेको शिक्षित एवं बुद्धिमान मानतेहैं, तो परायीस्त्री (अथवा पर-पुरुष) को काम भावसे नहीं देखिये। अपनी समझभर छोटेवड़े किसी भी जीवकी हत्या न करिये। यदि अपने को सर्वश्रेष्ट और बुद्धिजीवी मानतेहैं, तो किसीके साथ अन्याय अनुचित छल कपट नहीं करिये। न किसीको गाली दीजिये न किसीको मारिये पीटिये। यदि आप किसीकी वस्तुको चारसौबीस पढ़ कर ले लेने में, चोरी करनेमें, रिश्वत लेनेमें, किसीकी बहूबेटियों को फसानेमें ही स्वयंको बुद्धिजीवी समझतेहैं, तो आप बुद्धिके परमदरिद्रहैं। बुद्धिजीवी कहाने का वही व्यक्ति अधिकारी है, जो जनसमाज के कल्याण एवं सुख सुविधा की नवीन खोज करे। परोपकार ही जिसका प्रधान लक्षहो। और सदाचारपूर्वक ईश्वराधना करे॥ ध्यान रहे कि संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी आदि कई भाषाओं का विद्वान् हो जाने से, वेशकीमती वस्त्र पहनलेने

से, डिप्टीकलक्टर मिनिस्टर गवर्नर या राष्ट्रपति हो जानेसे, कवि, प्रवक्ता लेखक, विज्ञानी, यशस्वी हो जानेसे, शरीर बलवान या कुशाग्र बुद्धि हो जाने से ही व्यक्ति सच्चा मानव नहीं हो जाताहै । इसकेलिये शुभाचरण, सद्गुण, परोपकार, सभी जीवोंके प्रतिदया प्रेम तथा धर्म एवं भगवद्भक्ति को ही जीवनमें अनिवार्य रूपसे धारण करना होगा । यदि आप अपनेको मनीषी (विचार) मानतेहैं, तो आपको मांस मदिरा अंडा लहसुन प्याज भाँग अफीम नहीं सेवन करना चाहिये । क्योंकि ये सभी अभक्ष एवं शास्त्रनिषिद्ध पदार्थहैं । बीड़ी सिगरेट तम्बाकू का सेवन करना आपको उचित नहींहै । समझदार व्यक्तिको पशुओंकी भाँति खड़े होकर निर्लज्ज भावसे पेशाब नहीं करना चाहिये ॥ ठीकहै यदि पैन्ट पहनकर आपको बैठकर पेशाव करते नहीं बनता हैं, तो मर्यादापूर्वक लज्जाके साथ व्यवहार कीजिये ।

प्र०—जीवन किसलिये है ? उ०— पशुपक्षी कृमि कीटादिके जीवन तो अपने पूर्व-जन्मोंके मानवशरीर में किये गये शुभाशुभ कर्मोंको भोगरूप दुखसुख भोगने केलियेही हैं । परन्तु मानवजीवन पूर्वकृत कर्मोंका भोग भोगतेहुये भी नवीन कर्मोंको करने का कर्मक्षेत्रहै । मानवशरीरमें भगवानने सत्यासत्य एवं कर्माकर्म का विवेक दियाहै, इस-लिये मानवकोबुद्धिकेद्वारा विचारकरके वेदशास्त्र विहितकर्तव्यक ग्रहणऔरअकर्तव्यत्कायाग औरअसत्यरूप जगत व्यापारसे चित्तहटाकर सत्यरूप परमात्मतत्त्व भगवद्भक्ति परायण होकर अपना कल्याण करनेके लिये ॥ प्र०—मानवका चरमलक्ष क्याहै । उ०–दुखरूप संसारके सभी वस्तु व्यक्तियोंकी ममताका सर्वथा अभाव और परमानन्दस्वरूप मुक्ति (भगवत्प्राप्ति) होना । प्र०—मानवकी माग क्याहै । उ०—जीवनमें सरसता, स्वत-न्त्रता, अमरता, किन्तु ये सभी बातें भगवत्कृपा से प्राप्त होना सम्भव है । अन्यथा नहीं ॥ प्र०—जीवनके उद्देश्य प्राप्त कैसे हों ? उ०—सुखोंकी लालसा छोड़कर लगन पूर्वक सतत प्रयत्नशील रहनेपर ॥ प्र०—जीवनका पतन क्याहै ? उ०-आचरण और विचारों को गिराना ॥ प्र०—उद्देश्यपूर्ति में बाधा क्याहै । उ०— अविवेक और कार्य शिथिलता ॥ प्र०—उन बाधाओंको दूर कैसे किया जाये । उ०— विवेकी और कार्यदक्ष कर्तव्य परायण महापुरुषों का सत्संग करनेसे ॥ प्र०-जीवन की वास्तविक उन्नति क्या है । उ०—इन्द्रियों और मनका विषयोंमें न जाकर अन्तरमुखी होकर आत्मापरमात्मा का चिन्तवन करना ॥ प्र०-जीवनको आदर्श कैसे बनावैं । उ० सिद्धान्तोंकी स्थिरता, विचारोंकी दृढ़ता, आत्मा परमात्मा का ज्ञान, आत्म विश्वास, कर्तव्य कर्मोंमें एकरस लगन शीलता, परिश्रम से न डरना ॥ प्र०—जीवनके दोष क्या हैं ॥ उ०—असाध्य

भोजन सेवन करना, झूठ बोलना, चोरी, हिंसा, व्यभिचार करना किसी की निन्दा करना ॥ प्र०—जीवनको निर्दोष कैसे बनाया जाये ॥ उ०—जिन प्राणी, पदार्थों या समाजोंके संपर्क से दोष उत्पन्न होनेकी संभावना को उनका त्याग करने से ॥ प्र०—कौन कौन प्राणी पदारथोंसे दोष उत्पन्न होते हैं ॥ उ०—अखाद्य-मांस, मछली, अंडे, लहसुन प्याज, इत्यादि खाने और गाँजा, भाँग, बीड़ी तम्बाकू, सिगरेट, ताड़ी, शराब के सेवन से, पाखण्डी, व्यभिचारी, लोभी क्रोधी, परनिन्दक, चोर, हिंसक, जुहारी व्यक्ति या समाजके सम्पर्क से ॥ प्र०—जीवनमें सबसे हानि क्या है। उ०—मन और इन्द्रियोंको विषय बासनाओं में लगाये रहना, एवं चित को चंचल करके राग द्वेष में फसाये रखना। और भगवान् को भूलजाना ॥ प्र०—जीवन में सबसे बड़ा लाभ क्या है। उ०—मन और इन्द्रियों का बसमें होकर भगवत् भजन स्मरण होने लगना ॥ प्र०—जीवन के सच्चे हितैषी कौन हैं। उ०—जिसके सम्पर्कसे अज्ञान रूपी अन्धकार दूर होकर हृदय में दिव्यज्ञान का प्रकाश हो जाये। दुराचार दुर्गुणों का विनाश होकर जीवन में सदाचार सद्गुणोंका आविर्भाव हो जावे ॥ और जीवन कुपंथ से मुड़कर सुपंथ पर अग्रसर हो जावे। ऐसे महापुरुष ही जीवन के सच्चे हितैषी हैं ॥ प्र०—जीवन में धर्म का क्या स्थान है ॥ उ०—जो स्थान शरीर में आत्मा का है, वही स्थान जीवन में धर्म का है। जैसे विना आत्माके शरीर मुर्दा कहा जाता है, उसी प्रकार धर्म रहित मानव जीवन भी निरर्थक ही नहीं, महान् अनरर्थक है ॥ प्र०—कौन धर्म सबसे बड़ाहै। उ०—जो व्यक्ति जिस धर्ममें मान्यता रखताहै, उसके लिये वही धर्म बड़ाहै। प्र०—अधर्म का स्वरूप क्याहै। उ०—जिन क्रिया कलापोंसे किसी भी प्राणीको कष्ट पहुंचता हो, जैसे किसीको वस्तु चुरालेना, या छीन लेना, किसीको गालीदेना, झूठबोलना धोखादेना, किसी की बहू बेटीपर कुदृष्टि करना, निन्दाकरना, इत्यादि कर्म अधर्म हैं ॥ प्र०—धर्मका स्वरूप क्याहै। उ०—जिस क्रियासे प्राणियोंको सुखसुविधा मिले, जैसे असहायों की सहायता करना, दीन दुखियोंपर दया करना, परोपकार करना, सदाचारपूर्व जीवन बिताना; विचार पूर्वक भगवत् भजन करना। प्र०—जीवन पराधीन होजाने काक्या कारण है? उ०—अपने सुखको दूसरेमें समझने के कारण। स्त्री समझतीहै कि पुरुषमें सुखहै, इसलिये वह पुरुषके हाथ बिकजातीहै, पुरुष समझताहै कि स्त्रीमें सुखहै, इसलियेपुरुष दासवत् बने रहते हैं। इन्द्रिय और मनकी पराधीनता ही प्रधान कारणहै। मानव यदि अपने मन और इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार करले तो किसी के हाथ बिकने की आवश्यकता

ही क्याहै ॥ प्र०-जीवन स्वाधीन कैसे बनावें ? उ०- अपनेमन और इन्द्रियोंपर अधिकार प्राप्त होनेपर ॥ जीवका सहजस्वरूप ज्ञान, प्रकाश, एवं सुखमय है, जिसका प्रधानकेन्द्र परमात्माहै । अस्तु अपनेमन और इन्द्रियोंको शब्द, स्पर्शरूप, रस, गन्ध इनपंच विषयों से हटाकर सतचिद् आनंदघन परमात्मामें लगानेसे बस्तु व्यक्तिसे सुखकी आशारूपी पाश टूटतेही जीवन स्वाधीन हो जायेगा ॥ प्र०-जीवनमें सदाचार का क्या महत्त्व है ॥ उ०—सदाचार का जीवनमें सबसे ऊँचा स्थानहै । सदाचार जीवनका भी जीवनहै । सदाचार हीन मानव, मानव नहीं दानवहै । चोरी हिंसा व्यभिचार असत्यभाषण गाली परनिन्दा अभक्ष्य भोजन दुर्व्यसन आदिका त्याग करके ब्रह्मचर्य अहिंसा अस्तेय सत्यभाषण अन्तर बाहर की पवित्रता आदि धारण करना सदाचारहै । इनके साथ दया, क्षमा, शील; धैर्य, विचार, समता, मैत्री, भावना आदि सद्गुण स्वयं ही आ जातेहैं ॥

प्र०-जीवनमें साहित्य का क्या स्थानहै । उ०—जीवनके उत्थान और पतन का मूल कारण सत और असत साहित्य ही है । विषय उत्तेजक उपन्यास जासूसी इत्यादि पुस्तकोंको पढ़नेसे मानवका सर्वतोमुखी (भली भाँति) पतन हो जाताहै । प्र०-जीवनमें आहार का क्या स्थानहै । उ०—जीवनमें आहारका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है । कहावत है, जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन्न, मांस मछली अंडा लहसुन प्याज खाने और शराब, ताड़ी, गांजा भाँग तम्बाकू और तम्बाकू से बनी हुई बीड़ी सिगरेट पीनेवालों का अन्तःकरण तामसी प्रकृतिका बन जाताहै । उसका शुद्ध होना कठिन ही नहीं असंभव है ॥ छान्दोग्य उपनिषद में कहाहै— आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः । स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥ अर्थ—आहार शुद्ध ग्रहण करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होताहै, अन्तःकरण शुद्ध होनेसे स्मृति स्थिर होतीहै । और भगवत्स्मृति स्थिर होनेसे अज्ञान की ग्रन्थियाँ खुलकर जीवनका कल्याण हो जाताहै । उपर्युक्त श्लोक में आहार शब्द व्यापकार्थमें कहा गयाहै । जिसका भाव यहहै कि सभी इन्द्रियोंका आहार शुद्धहोना चाहिये । जैसे-शास्त्र निषेध पदार्थोंको न खाना, खाद्यपदार्थोंको ही खाना, आँखसे कुभावपूर्वक कुदृष्टिसे किसीको न देखना, किसीकी निन्दा वा विषय चर्चा न सुनना अपवित्र दुर्गन्ध को नहीं सूँघना, मनसे अनुचित न सोचना, अर्थात् उचित पदार्थ खाना, उचित भावसे देखना, उचित वार्ता सुनना, उचित सूँघना, उचितभाव से स्पर्श करना मनसे उचित सोचना आहार शुद्धीहै ॥ प्र०-जीवनमें भक्तिकी क्या आवश्यकता है, और भक्ति किसे कहतेहैं । उ०-माता पिता बड़े बूढ़े तथा गुरुजनों एवं भगवान् श्रीहरि के प्रति श्रद्धा, सेवा तथा आज्ञाकारिता का भाव होना ही भक्ति

है । भक्ति शास्त्रों में भक्ति के महर्षियों ने अनेक भेद बताये हैं । उनमें से स्थूल रूपमें नवधा भक्ति एवं प्रेमापरा का विशेष चर्चा है । भक्तिसे ही मानवका हृदय पवित्र होता है । तभी भगवत् प्राप्ति होती है । भक्तिरहित व्यक्ति ज्ञान वैराग्य या भगवत्प्राप्ति का कभी भी अधिकारी नहीं हो सकता ॥ प्र०-ज्ञान को जीवनमें क्या आवश्यकता है । उ०-अज्ञान अन्धकार स्वरूप दुखदाई है । और ज्ञान प्रकाशस्वरूप सुखदाई है, सुख प्रकाश और ज्ञानकी सभीको परमावश्यकता है, ज्ञानके विना व्यवहारमें भी काम नहीं चलता, तब सोचिये कि संसारसे मुक्ति या भगवत्प्राप्ति विना ज्ञानके कैसे हो सकती है । ज्ञानके ही अभावमें जीव अपनेको स्वतन्त्र और भोक्ता मानता है, ज्ञान होनेपर समझमें आता है कि—जीव सर्वदा ब्रह्मके परतन्त्र और उसका भोग्य है, स्वयं न तो स्वतन्त्र ही है न भोक्ता ही है ॥ अस्तु ज्ञानरहित मानव दानव या पशुवत है ॥

प्र०-जीवनमें शिक्षाका क्या महत्त्व है । उ०-जो महत्त्व घरमें प्रकाश का है, वही महत्त्व जीवनमें शिक्षाका है । जिसप्रकार विना प्रकाशका घर सुन्दर होनेपर भी भयानक स्मशान सदृश्य लगता है । उसीप्रकार अशिक्षित जीवन पशुवत है । शिक्षा का अर्थ है आवश्यक उचित व्यवहारों का बोध होना । कई भाषायें पढ़नेपर भी यदि उचित अनुचित, आवश्यकता अनावश्यकता का बोध न होपाये, तो वह शिक्षितव्यक्ति भी अशिक्षित पशुवत ही है ॥ प्र० जीवन में श्रमका क्या स्थान है । उ०-श्रम रहित जीवन रुके हुये थोड़ेसे पानीके समान दोषपूर्ण हो जाता है । परिश्रमी व्यक्ति नीरोग एवं स्वस्थ रहता है । परिश्रम रहित जीवन आलसी और रोगी हो जाता है । अस्तु स्वस्थ और नीरोग रहनेके लिये मानव मात्रको परिश्रम करना चाहिये ॥ प्र०-जीवन में व्यवहारका क्या स्थान है । उ०-मानव जीवनमें व्यवहारके बोधकी अत्यधिक आवश्यकता है । जोव्यक्ति व्यवहारकुशल नहीं है, वह पग पगपर ठोकर खाता है । ध्यानरहे कि व्यवहार की पवित्रता के विना लोक एवं परलोक कहीं भी सुख और शान्ति नहीं मिलती, प्रभु कृपासे प्राप्त प्राणी पदार्थों और परिस्थितियों में व्यवहार को पवित्र बनाये रहना चाहिये । जो व्यक्ति अपने व्यवहार को मधुर बनाये रहनेमें कुशल है, वह सभी स्थलों में सर्वदा सुखी रहता है॥ प्र०-जीवनमें शोक मुक्त कैसे हों । उ०-प्राणी पदार्थ अवस्था, परिस्थिति शरीर आदि को अपना मानकर ममता नहीं करके केवल समयानुसार उचित व्यवहार करनेसे मानव इस जीवनमें ही शोकमुक्त हो सकता है । ध्यानरहे कि सतत परिवर्तनशील जगतमें कोईभी वस्तु, व्यक्ति अवस्था, परिस्थिति एकरस नहीं रह सकती है । तब भगवत कृपासे प्राप्त सामयिक वस्तु व्यक्ति; अवस्था,

परिस्थिति का सदुपयोग करनाही मानवकी मानवता एवं बुद्धिमानी है । प्र०-धर्म किसे कहतेहैं । उ०-सभी पदार्थों के धर्म भिन्नभिन्न होतेहैं । यथा—जलका धर्म शीतलत्व, अग्नि का धर्म ऊष्णत्व, पृथ्वी का धर्म गन्ध, इसीप्रकार जीवात्मा का धर्म ज्ञानहै । अर्थात् ज्ञानपूर्वक उचित अनुचित, आवश्यकता अनावश्यकता का कर्तव्याकर्तव्य का विचारकरके, अनावश्यक अकर्तव्य अनुचितका त्यागकरके, आवश्यक उचित, कर्तव्य कार्यको करनाही धर्म है ॥

❊ सत्संग–सुधा ❊

विचार करके देखने पर ज्ञात होताहै, कि संसार में प्रधानतया दो ही तत्त्व हैं । एक सत्य तथा दूसरा असत्य । प्र० सत्य किसे कहतेहैं ॥ उ०-जो सर्वदा एकरस बना रहे । जिसका परिवर्तन एवं परिवर्धन न हो । प्र०-असत्य किसे कहते हैं । उ -जो सर्वदा परिवर्तनशील हो । प्र०-सर्वदा एकरस रहने वाला तत्त्व कौन है । उ०—ब्रह्म ही सर्वदा एकरस रहनेवाला है । प्र०—असत्य तत्त्व कौनहै । उ०-माया एवं मायाकृत वस्तु, व्यक्ति, देश; काल, अवस्था । प्र०-ब्रह्म किसे कहतेहै । उ०-जो सर्वदा सभी समयमें सर्वत्र समानरूपसे एकरस व्यापक हो । और जो स्वाभाविक आनन्द-ज्ञान एवं प्रकाशका एकमात्र केन्द्र हो ॥ शास्त्रोंमें ब्रह्मको निर्गुण निराकार एवं सगुण साकार दो रूपोंमें बताया है । प्र०-निराकार तथा साकार दोनों में अधिक उपादेय कौन स्वरूप है । उ०-ज्ञान विशिष्ट कैवल्य मुक्ति के चाहनेवालों को निराकर और भक्ति विशिष्ट भगवत्कृपासे नित्य कैङ्कर्य चाहनेवालों को साकार परमश्रेयकरहै । प्र०-इन दोनों रूपोंमें प्रधान कौन है । उ०-ब्रह्म के ही दोनों स्वरूप होने के कारण दोनों ही समानहैं । प्रधान तथा गौणकी कल्पना नहीं है । प्र०-मैं किस स्वरूप की उपासना करूँ । उ०-आप जानिये । अपने हृदय से पूछिये कि किस स्वरूप को अपना अधिक हितकर समझता है । जो स्वरूप आपको प्रिय हो, सावधानचित से एकाग्रता पूर्वक उसीमें लगजाइये ।

प्र०-सरलतापूर्वक किस स्वरूप की उपासना हो सकती है । उ०-जो साधक जिस स्वरूप की उपासना करनेमें कुशल है, उसके लिये वही स्वरूप की उपासना अधिक सरल पड़ेगी । फिरभी विचार करने से निश्चित होता है कि-निराकार स्वरूप की उपासना की अपेक्षा साकार स्वरूप की उपासना करने में अधिक सुविधा है । क्योंकि निराकार उपासना में सर्व प्रथम तो अधिकारी पात्र होना अनिवार्य है । जो

अन्तःकरण विशुद्ध हुये और साधन चतुष्टय सम्पन्न हुये बिना असम्भव है । दूसरी बात यह भी है कि—निराकार उपासना में साधकको अपने मन, चित्त को लगाने का कुछभी अवलंबनहीं मिलता । इसलिये इस उपासनामें साधकका मनऊब जाताहै । क्यों कि मन स्वाभाविक ही रूपप्रिय है । अनादिकाल से अद्यावधि पर्यंत रूपाशक्त होने के कारण अरूप की उपासना करना महान कठिन लगतीहै । तीसरी बात यह है कि—साधनकालमें दिव्य रसानुभावके अभावमें विषय रसको त्यागना सर्वथा दुर्घटहो जाताहै । और सगुण साकारकी उपासनामें भगवान् की मंगलमय मंजुल मधुराति मधुर झाँकी तथा प्रभुके मंगलमय दिव्य गुण गण, सच्चिदानंदमय लीला तथा परम प्रेमरस सागर मोद निधान परम मंगलमय नाम कीर्त्तन स्मरण इत्यादि अनेक अवलम्ब हैं ।

निराकार साकार दोनों स्वरूप ब्रह्मके ही हैं । तथापि विचारने पर पता लगता है कि—निराकार उपासनाकी अपेक्षा साकार स्वरूप की उपासनामें आनन्द, रस का अनुभव अधिक होताहै । इतिहास पुराण साक्षीहैं कि—सृष्टिकाल से अद्यावधि पर्यन्त भगवान् की भक्ति भावना युक्त रूपाशक्त कोईभी भक्त निराकार की ओर आकर्षित नहीं हुआ है । किन्तु ज्ञाननिष्ठ, निराकार उपासना परायण, अनेक परमहंस सगुणविग्रह को देखकर अतिशय आकर्षित होते देखे गयेहैं । यथा—सनकादिन, शुक जनकादि प्रमाणहैं । देखिये श्रीरामचरित मानस में-पूज्य चरण गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने लिखाहै । मुनि रघुपति छवि अतुल विलोकी । भये मगन मन सके न रोकी ॥ एकटक रहे निमेष न लावहिं । दो० ३३ उत्तरकाण्ड—में प्रभु श्री राम जी को देखकर अति आशक्त चित्त से प्रार्थना करके भक्ति का वरदान माँगकर ब्रह्मलोक गये । बालकाण्ड में—मूरति मधुर मनोहर देखी । भये विदेह विदेह विशेषी ॥ पुनः श्री विश्वामित्रजी से कहा कि—इनहिं बिलोकत अतिअनुरागा । वरवस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा ॥ यदि अद्वैत सिद्धान्तानुसार ब्रह्म चिन्तवन ही प्रधान होता, तो फिर श्री जनक जी की यह विपरीत अवस्था प्राप्त नहीं होती । और जगत वन्द्य भूतमनभावन भगवान् श्री भोलेनाथ जी भी । शंकर रामरूप अनुरागे । नयन पंचदश अतिप्रिय लागे ॥ पुनः लंकाकाण्ड में आकर श्री राम जी की स्तुति किये । बाद में जब श्री राम जी सिंहासनारूढ़ हुये तो भी आकर स्तुतिकर भक्ति का वर माँगकर गये । यथा—

उत्तरकाण्ड दोहा १३—वैनतेय सुनु शम्भुतव, आये जहँ रघुवीर । विनयकरत गद्‌गद् गिरा, पूरित पुलक शरीर ॥ स्तुतिके बाद—वार वार वर मागौं हरषि देहु श्री रंग । पद सरोज अनपायिनी भक्ति सदा सतसंग ॥ १४ ॥ अस्तु यह निर्विवाद सिद्ध निर्भ्रान्ति सिद्धान्त है कि निराकार उपासना की अपेक्षा साकार की उपासना अधिक

सरस प्रिय और सुगमहै । प्र०-ब्रह्मानन्द एवं परमानन्दमें क्या अन्तरहै । उ०-यद्यपि दोनोंही आनन्द एकही तत्त्वसे प्राप्त होनेके कारण पर्यायवाचीहैं, तथापि रसानुभूतिकी दृष्टिकोणसे ब्रह्मानन्दकी अपेक्षा परमानन्द अधिक आकर्षकहै । जब किसी जीवपर प्रभुकी अहैतुकी कृपा होतीहै, तब उस साधकका मन जगतके सभी नाम, रूप, क्रीडात्मक विषय जन्यसुखोंसे उपराम होकर ब्रह्ममें तदाकारता को प्राप्त होताहै । ब्रह्मकेपरम प्रकाशमय निर्गुणनिराकार स्वरूपका अनुभव करताहै । इसीलिये जागतिक(सांसारिक) सभी सुखोंसे ब्रह्मानन्द अधिक उत्कृष्ट है । किन्तु परमानन्द के दर्शन मात्रसे ब्रह्मानन्द अत्यन्त फीका लगने लगताहै । जिसप्रकार परमानन्द स्वरूप मंगलमय सच्चिदानन्दमय विग्रह श्री राम जी का दर्शन करके जीवन मुक्त सर्वदा ब्रह्मानन्दमय लीन रहनेवाले सनकादिक और श्री जनक जी न्यौछावर होगये । जिन श्री विदेह जी के यहाँ श्री शुकदेव जी जैसे महान् विरक्त परमहंस शिरोमणि भी ज्ञानदीक्षाके लिये आते थे । अस्तु ब्रह्मानन्दसे परमानन्द परमोत्कृष्टहै ॥

प्रथम बाततो यहीहै कि—नाम, रूप लीला, रहित केवल वक्तव्य मात्र निराकार ब्रह्मका समझना ही कठिनहै । यदि समझ भी ले तो अवलम्ब रहित साधनकरना सर्वथा असंभव सा है । इतनेपर भी पगपग पर विघ्न बाधायें आतीहैं, उनका भय । प्रभु कृपासे निर्विघ्न साधना होजानेपर भी अपना अस्तित्व मिटजाने के कारण परमानन्द रसानुभवसे सर्वदा अलग ही रहताहै । और साकर ब्रह्मकी उपासनामें दिव्य नाम, रूप, लीला- धाम, गुणोंके अनुभव होते रहनेके कारण साधक का मन सर्वदा प्रसन्न रहताहै । अस्तु इस सुविधाकी दृष्टिसे भी निराकारकी अपेक्षा साकार ब्रह्मकी उपासना ही श्रेयकर है ॥ दूसरी बात यह भी है कि वर्तमानकाल में खाद्यपदार्थोंके उत्पादन की क्रिया विविध प्रकारके तामसी पदार्थोंसे निर्मित खादों द्वारा होनेके कारण खाद्यपदार्थ ही शुद्ध सात्विक नहीं हैं । तब इन पदार्थों को खानेसे साधक को शुद्ध सात्विक ज्ञानहोना कठिनहै । यहाँतक कि अन्यपदार्थों को भी शुद्ध करनेवाला घी को भी तामसी (चर्बी आदि) अशुद्ध वस्तुओंको मिलाकर महान् तामसी बनादिया जाता है । जिसका सेवन करनेपर सर्वप्रथम तो स्वास्थही अनुकूल नहीं रहता । यदि स्वास्थ ठीक रहा भी तो मन, चित, बुधि स्वाभाविक रूप से ब्रह्मज्ञान की ओर जाना प्रिय नहीं मानते । तब सोचिये कि, निराकार उपासना में वर्तमान युग में कितनी कठिनाई है । यदि दैवयोग से निर्वाह भी हो जाये, तो भगवान् कहतेहैं कि—भक्ति हीन प्रिय मोहिं न सोऊ । अस्तु इस समयमें सगुण साकार की उपासना करनी ही सुगम तथा सुलभ हो सकती है ।

❀ अहिंसा निरूपण ❀

प्र०-अहिंसा किसे कहतेहैं । उ०—मनसे किसीका अनिष्ट करने की भावना, करना, वाणीसे किसीको कठोर शब्द कहकर पीड़ित करना, और शरीर से किसीको मारना पीटना या हत्या करना, ये तीनप्रकार को अहिंसा शास्त्रोंमें मानी गई है ॥ प्र०—मानव जीवनमें अहिंसा की क्या आवश्यकता है ? उ०— हिंसा रहित अहिंसक जीवन ही वास्तवमें मानव जीवनहै । हिंसायुक्त जीवन, दानव या पशुवत् जीवनहै । क्योंकि मानवको ही सद्बुद्धि और विचार करनेकी शक्ति भगवान् से प्राप्तहुई है । पशुओं में विचार करने की बुद्धि विधायक की ओर से दी ही नहीं गई है । किन्तु दानवोंमें बुद्धितो होतीहै, तथापि आसुरी प्रकृतिवश बुद्धिसे उचित कार्य न करके ऐसे ही कार्य करतेहैं, जिससे प्रत्यक्ष और भविष्यमें अपनेको तथा अन्य लोगोंको दुखी होना पड़े । मानव को यही विशेषताहै कि-वह सर्वदा ऐसे ही कार्य करताहै; जिससे स्वयं तथा अन्य सभीको वर्तमान एवं भविष्यमें सुख शान्ति प्राप्ति हो । अहिंसा परमोधमः महाभारत अनुशासन पर्व अ० ११६ का श्लो० २८ और पद्म० पु० स्वर्ग खं० अ०३१ श्लोक २७ ॥ अब पाठकगण वेदोंमें अहिंसाका निरूपण देखें ॥

❊ वेदमें अहिंसा ❊

वेदमें केवल गायकी ही अहिंसा नहीं लिखी है, परन्तु सर्वसाधारण द्विपाद-चतुष्पादोंकी भी अहिंसा लिखी है । सब भूतोंको मित्रदृष्टिसे देखनेका वेदका महा-सिद्धांत है । उसके साथ निम्नलिखित प्रमाणोंका विचार कीजिये—

यजमानस्य पशून् पाहि ॥ यजुर्वेद १.१ ॥ मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ यजुर्वेद १२.३२ ॥ अश्वं···मा हिंसीः··· ॥ यजुर्वेद १२.४२ ॥ अविं ··मां हिंसीः ··· ॥ यजुर्वेद १२.४४ ॥ इमं मा हिंसीर्द्विपदं पशुम् ॥ यजुर्वेद १२.४७ ॥ इमं मा हिंसीः···वाजिनम् ॥ यजुर्वेद ॥ १२.४८ ॥ इममूर्णायुं·· मा हिंसीः ॥ यजुर्वेद १३.५० ॥ मा हिंसीः पुरुषम् -॥ यजुर्वेद १६.३ ॥ मा···हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥ अथर्ववेद १२.२.१ ॥

घोड़ा, बकरा, द्विपाद-चतुष्पाद पशु, ऊन देनेवाला तथा पुरुष-अपने प्रजावर्ग में से किसीकी भी हिंसा न कर । ये मन्त्र, मित्रदृष्टिवाले मन्त्रोंके साथ पढ़नेसे, वेदका अहिंसापूर्ण उपदेश स्पष्ट सामने आ जायगा । सर्वसाधारण प्राणियोंको मित्रदृष्टिसे

देखो और इन प्राणियोंकी हिंसा तो कभी भी न करो, यह वेदका उपदेश मनुष्यों के लिये है। इतना होते हुयेभी कई यूरोपियन समझतेहैं कि वेदमें अहिंसाका तत्त्व वैसा उत्कट नहीं है जैसा आगे बढ़ गया है।

पण्डित धर्मदेव विद्यावाचस्पतिने अपनी पुस्तक 'वेदोंका यथार्थ स्वरूप' (प्रकाशक--गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार) में वेदोंमें अहिंसा के सम्बन्धमें पृष्ठ ४८८ ४८६पर सुन्दर विवेचन किया है, जिसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत किया जाताहै—

बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिंसीस्तन्वा प्रजाः ॥ (यजुर्वेद १२-३२)

अर्थात्—(बृहद्भिः भानुभिः) तू महान् ज्ञान किरणोंसे प्रकाशित हो और (तन्वा) अपने शरीरसे (प्रजाः मा हिंसीः) प्राणियोंकी हिंसा मत कर।

ये रात्रिमनुतिष्ठन्ति ये च भूतेषु जाग्रति । पशून् ये सर्वान् रक्षन्ति ते न आत्मसु जाग्रति ते नः पशुषु जाग्रति ॥ (अथर्ववेद १९.४८.५)

अर्थात्- जो धर्मात्मा रात्रिमें ध्यानादियोगाभ्यास करते हैं, सब प्राणियों के विषयमें जो सदा सावधान रहतेहैं, जो सब पशुओंकी रक्षा करतेहैं, वे हमारी आत्माओंकी उन्नति के विषयमें भी जागरूक रहते हैं। वे इस बातका सदा ध्यान रखतेहैं, कि किसी पशुको हमारे व्यवहारसे कष्ट न पहुंचे। प्रियः पशूनां भूयासम्। (अथर्ववेद १७.४) अर्थात्-मैं पशुओंका प्यारा बनूँ। जो पशुओंकी रक्षा करता है और उन्हें प्रेमदृष्टिसे देखता है वही उनका प्रिय बन सकता है, न कि उन्हें मारनेवाला यह बात स्पष्ट है।

यह माना जा सकता है कि जैन-बौद्धोंने जिसप्रकार आत्यन्तिक और एकान्तिक अहिंसा प्रचलित की वैसी वेदमें नहीं थी, लेकिन अहिंसाका सिद्धान्त ही वेदमें नहीं था—यह कहना अयुक्त है। वेद सर्वसाधारण आचरण के लिये अहिंसाका ही उपदेश दे रहा है, परन्तु प्रसंगविशेष में युद्धादि प्रसंगोंमें वध करनेसे पीछे रहने की आज्ञा भी नहीं देता, अर्थात् वेदमें इसी प्रकारकी अहिंसा है जो मानते हुए राष्ट्रीय महायुद्धमें आवश्यक वधकी भी उसमें सम्भावना है। परन्तु कोई कहे कि अपने पेट के लिये दूसरों का वध किया जाय तो वैसी हिंसा करनेकी आज्ञा वेद नहीं देताहै। यह भेद पाठकोंको अवश्य ध्यानमें धारण करना चाहिये। वास्तवमें देखा जाय तो वेदमें ही अहिंसाका सच्चा सिद्धान्त है। तभी तो वेदोंको माननेवाले आर्य रास्ते चलते कीड़े-मकोड़ोंको भी बचानेकी चेष्टा करते हैं और यदि कोई भूलसे दबभी जाय तो वे काँप उठते हैं और 'राम राम' करते हुए पीछे हटते हैं, अपने घरमें अण्डा देने वाली चिड़ियाँ-कबूतरोंकी भी रक्षा करते हैं।

नवीन सभ्यतामें पलनेवाले कुछ महाशय कहा करते हैं कि जीव हिंसा करना पाप है, किन्तु अण्डा तो निर्जीव है, उसे खाने में कोई दोष नहीं है । परन्तु बुद्धि-जीवी होने का दावा करनेवाले उन बुद्धिके शत्रुओं से यदि पूछा जाये, कि अंडा किस पेड़ का फलहै, अथवा किस सरोवर में सिंघाड़े की भाँति फरता है, अथवा किस खेतमें धान या गेहूँ की भाँति बोया जाता है । तब कहना ही होगा कि अंडा मुर्गी के बच्चे का कारणहै । प्र०-अंडा किस पदार्थ से बनता है । उ०-मुर्गे का वीर्य और मुर्गी की रज से ॥ प्र०-अंडा खाद्यपदार्थ है या नहीं । उ०-मानवों का खाद्यप-दार्थ अंडा नहीं है । क्यों कि अंडा में मुर्गी और मुर्गे के रजवीर्य के अतिरिक्त है ही क्या । अंडा खानेवाले विचार करेंकि सब योनियोंमें सर्वश्रेष्ठ मानवशरीर हीहै । तथापि यदि किसी मनुष्यके वस्त्र में वीर्य का दाग लगा हो, तो सभी देखनेवालों को घृणा लगती है । कोई भी सभ्य व्यक्ति उससे स्पर्श करने की भी रुचि नहीं रखते हैं । तब सोचिये कि मुर्गी एवं मुर्गे के रज वीर्यको खाने वाले व्यक्ति कितने अधिक विचारवान हैं । प्र०-मांस मछली मनुष्यको खाना चाहिये या नहीं । उ०-मांसमछली खाना और शराब पीना मनुष्य को निषेध है, यह तो यक्ष राक्षस तथा पिशाचों का भोजन है । यथा- १—यक्ष रक्षः पिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम् । तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नता हविः ॥ ९६ मनु स्मृति अ० ११ ॥ २—यतस्तं मांसमुद्धृत्य तिलमात्र प्रमाणतः । खादितुं दीयते तेषां भित्वा चैव तु शोणितम् ॥ शिव पु०उमा संहिता अ० १० श्लो० ५० ॥ ३—भक्ष्या भक्ष्य समश्नंति मत्स्य मांसादिकं नराः । वने द्विजातयाश्चान्ये भुंजते च पापकम् ॥ ५१ प० पु० सृष्टि खं० अ० ७६ ॥ मांस का न खानाही धर्महै, यथा-मांसस्याऽभक्षणेधर्मो विशिष्ट इति नः श्रुतिः । ४३ म०भा० अनु० पर्व अ० ११५ ॥ मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह धार्मिकाः ॥ ७८ ॥ अनु० पर्व अ० ११५ ॥ पुत्रमांसोपमंजानन् खादते यो विचक्षणः । मांसमोह समायुक्तः पुरुषः सोऽधमः स्मृतः ॥ ११ अनु० पर्व अ० ११४ ॥ प्र०—मांस खाना पाप क्यों है । उ०—इसलिये कि मांस सूखी घास, लकड़ी या पत्थर से पैदा नहीं होता है; न अन्न जैसे बोया जाता है । किसी जीवधारी को मारकर उसके शरीरको काटकर निकाला जाता है । मांस खाने वालों के काँटा लगता है, तो भी कष्ट का अनुभव करने लगते हैं । किन्तु अपने आप किसी के शरीर को काटकर खाने पर भी अपने को बुद्धिमान एवं धार्मिक मानते हैं, यह भारी भूल है । अस्तु मांस मनुष्यों का खाद्यपदार्थ नहीं है, इसलिये मानव मात्रको मांस नहीं खाना चाहिये ॥

सन्त=समाज

प्र०-सन्त किसे कहतेहैं ? उ०-जो सदाचार सद्गुण सद्भावना युक्त सद्विचारपूर्वक इन्द्रियोंका दमन करके आत्मा और परमात्माका चिन्तवन करतेहुये; प्राणिमात्र के उपकारमें रत रहताहै ॥ प्र०-सन्तोंका वेष कैसा होताहै ? उ०-सन्त अनेक वेषमें रहतेहैं । प्र०-क्या संतोंका स्वरूप कुछ निश्चयहै या नहीं ? उ०-यद्यपि सद्ग्रन्थोंमें सन्तोंके स्वरूप की चर्चाहै, किन्तु सर्वथा यह निर्णय नहीं है कि इसके भिन्न स्वरूपवाले संत नहीं माने जायें । इसलिये सन्तों के स्वरूपका सर्वथा निश्चय करना किसीके भी वशकी बात नहींहै । प्र०-सतोंका सांकेतिक स्वरूप तो कहा जाय ? उ०-अनेक प्रकारके स्वरूपोंमें से कुछ ये हैं यथा—श्रीवैष्णव, शैव्य, शाक्त, इत्यादि, इनमें कुछ सन्त तो अपना घरद्वार त्यागकर विविक्त प्रदेशमें रहकर अपने इष्टरूपकी साधना करतेहैं । कुछसन्त गावों नगरों में मठ मन्दिर बनाकर रहते हुये, परोपकार परायण होकर अपनी साधनामें संलग्न रहतेहैं । और कुछ सन्त अपने घर पर परिवारके साथ रहकर ही साधना करतेहैं ॥ प्र०-सम्प्रदायें कितनी और कौन कौनहै ? उ०-श्रीवैष्णव सम्प्रदाय, श्रीशैव्यसम्प्रदाय, शाक्त, स्मार्त, गाणपत्य सौर्य, इत्यादि कई सम्प्रदायें हैं । इनकी भी कई कई शाखायेंहैं । प्र०-सर्वश्रेष्ट सम्प्रदाय कौनहै ? उ०-जो व्यक्ति जिस सम्प्रदायमें श्रद्धा विश्वासपूर्वक अपनी मान्यता दृढ़कर चुकाहै, उसके लिये वही सम्प्रदाय सर्वश्रेष्टहै । प्र०-सन्तोंको गाँवमें रहना चाहिये या नहीं ।

उ०-प्रवृत्ति और निवृत्ति इन दो मार्गोंमें से प्रवृत्ति मार्गवाले सन्त तो नगरों में रहते ही हैं । किन्तु निवृत्तिमार्गवाले सन्तोंका निवास उनकी रुचिपर निर्भरहै, अपनी इच्छासे गाँवों नगरोंमें रहें या निर्जनवनमें रहें । प्र०-अधिक उत्तम निवास कहाँ का माना गयाहै । उ०-बड़े बड़े गावों एवं नगरोंका निवास तामसी, साधारण ग्रामों का निवास राजसी, वनका निवास सात्त्विकी और भगवान्के मन्दिरका निवास गुणातीत है । किन्तु यदि मर्यादा का पालन किया जाय तो । अन्यथा मन्दिरमें भ्रष्टचार करनेपर महान् अनर्थकारीहै । भगवान् का मन्दिर जहाँ भी हो वहाँ का निवास सर्वोत्तमहै ॥ प्र०-सन्तोंको गाँव नगरमें जाना चाहिये या नहीं ? उ०-जिन सन्तोंका मन सांसारिक सभी व्यवहारों से ऊँचा उठगया है, वह चाहे जहाँ भी रहें कुछ भी हानि लाभ नहींहै । किन्तु जो साधकहै उसे अनिवार्य रूपसे एकान्त प्रदेश में ही रहकर साधना करना लाभकर और जन समाजमें रहना हानिकर होगा । प्र०-सन्तों

को रुपया पैसा छूना चाहिये या नहीं ? उ०-जिसके जीवनमें रुपया पैसा से बिकने वाली किसी बस्तु की आवश्यकता नहीं है, वह रुपया पैसा क्यों छुयेगा, यदि छूता भी है तो भूल है, अनावश्यक बस्तुको संग्रहकरना कौन बुद्धिमानी है । किन्तु ध्यान रहे ! जिसके जीवनमें रुपयेसे मिलनेवाले सभी पदार्थोंकी आवश्यकता होते हुयेभी यदि रुपना न छूने की नाटक मात्र करताहै, तो अवश्यही पाखण्डहै ।

प्र०—कुछ लोग तो रुपया पैसा नहीं छूतेहैं, परन्तु रुपये से मिलने वाले सभी पदार्थों को उपभोग करतेहैं, ऐसा क्यों ? उ०—किसी का दोष नहींहै, यह सब कलि-काल का प्रभावहै । आजका चतुर व्यक्ति सोचताहै कि हम सब सुखोंका भोग करते हुये वीतराग महाविरक्त परमहंस भी कहलायें और सबसे अच्छे सन्तभी माने जायें, तब उसको ही पैसा न छूनेका नाटक करना अनिवार्य परमावश्यक हो जाताहै। ताकि हमें सबलोग तपोनिष्ठ वीतराग और परम विरक्त भी मानेंगे, साथही साथ हम सम्यक प्रकार सुख स्वाद भी भोगते रहेंगे । रुपये पैसे में कौन सी अग्नि या विष मिलाहै कि जिसे छूनेसे व्यक्ति जलजायेगा या मर जायेगा । रुपया पैसा में न तो अग्नि ही है, न विष ही । जो भी अवगुणहै, वह रुपये पैसे से मिलनेवाले पदार्थों में है । अस्तु पैसा छूना या न छूना कुछभी महत्त्व नहीं रखताहै । मेरी समझमें तो सबसे वीतराग वह सन्तहै, जो सरल स्वभावसे रहकर अहर्निशि भगवद्भजन करताहै, छुधा निवृत्ति केलिये प्रभु कृपासे प्राप्त साधारणतथा अन्न, साग, फल इत्यादि से काम चला लेताहै, वह पैसा छुये या न छुये । किन्तु यह तो भारी पाखण्डहै कि पैसा न छूनेकी नाटक दिखलाकर अनेक प्रकारके पकवान मेवा, दूध, घी, मक्खन, मलाई, खीर पूड़ी, हलुवा चटकर जाना, तथा प्राइवेट मोटरों या रिजर्वेशन ट्रेन या वायु-यान में बैठकर व्योम वीनिकाओं की शैर करना । ऐसा पैसा त्याग करना जनता को धोखा देना तथा अपने को रसातल भेजना है ॥ प्र०—रुपया पैसा न छूने से क्या लाभहै ? उ०—कुछ नहीं, केवल अभिमान बड़ानाहै कि मैं महाविरक्त हूँ । लाभतो तब है कि पैसा का व्यवहार न करे । जो पैसा त्यागीहै, उसे पैसा से मिलनेवाली किसी भी वस्तु से कुछभी सम्बन्ध न रखकर— निर्जन वनमें पूस या पत्तेकी कुटी स्वय बनाकर रहना तथा जंगली पत्ती कन्द मूल फल या फूलों से जीवन निर्वाह करना चाहिये । किन्तु पैसा त्यागियों को पंचायती मोटर गाड़ियोंमें चढ़ने पर कष्ट होता है. जहाँ पधारें वहाँ दो चार सेवक हों जो सब व्यवस्था करें । कीमती वस्त्र घड़ी जूता. छड़ी टार्च का प्रयोग करें, अनेक प्रकार का भोजन पायें सबसे श्रेष्ठ सन्त माने जायें, ये क्या कम है, और क्या लाभ चाहिये ।

❋ लीलाकाल में भगवान् के श्रीमुख वचन ❋

बँधगया मुझसे जाती न छोरी । ऐसी अद्भुत है ये प्रेमडोरी ॥ भक्तिबिन मैं न भोगों के वश हूँ; प्रेमके फूल फल जल से खुश हूँ । भावशून्यों कि दुनियाँ है कोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मोहिं वेदों ने स्मृत बताया, शेष शारद नहीं पार पाया । विनय सुर मुनि करत प्रम बोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मोहिं शंकर समाधी लगावैं, बर्षों ढूंढ़े पै ब्रह्मा न पावैं । किन्तु प्रेमिन सों चलती न चोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मिथिलाबासिन से नाता लगाया, ब्याह श्री मैथिली सँग रचाया । भय सकल नारि नर रस विभोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मैंने केवट को हिय से लगाया; अरु जटायू से नाता निभाया । करिक्रिया पितु सरिस प्रेम बोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मुझको महलों के व्यंजन न भाये; वेर शवरी के मुख सों सराहे । प्रेम सों लाई जो भरि के झोरी है, गरीबों की यह प्रेम डोरी ॥ ऐ० अ० ॥ भाव भरि मुझको जो कोई पुकारे; उसकी नैया लगादूँ किनारे । भव भँवर से वह निकलेगी कोरी ॥ जिसने छोड़ी न ये प्रम डोरी ॥ ऐ० अ० ॥ भक्त नैया है तो मैं खिवैया, भक्त बछड़ा है तो मैं हूँ गैया । भक्त की भक्ति मोहिं वश कियो री ॥ ऐ० अ० ॥ सब जगतका मैं शासक कहाता, कोटि ब्रह्माण्ड क्षणमें बनाता । भावुकों के भाव वश भयो री ॥ ऐ० अ० ॥ मोरि आज्ञा सबनि शीशधारी, काल, मृत्यु, पवन, जम; तमारी । डरि के स्तुति करें हाथ जोरी ॥ ऐ० अ० ॥ ब्रह्म व्यापक मुझे वेद गाते; अज अगोचर अकथ सब बताते । प्रेमियों सँग प्रगटि रम पियोरी ॥ ऐ० अ० ॥ मैं जिसे चाहूँ जो कुछ बनादूँ । सारी सृष्टी पलक में मिटादूँ । किन्तु प्रेमिन सों वश ना चल्यो री ॥ ऐ० अ० ॥ हैं चराचर सभी अंश मेरे; कहते श्रुति शास्त्र शुचि संत टेरे । प्रेमियो ने प्रगट मोहि कियो री ॥ ऐ० अ० ॥

प्राणधन श्रीअवधनृप दुलारे । कौशिलामाँके नयननके तारे ॥ भावग्राहक कृपानिधि कहाते, बिरद आगम निगम संतगाते । प्रेमियोंके जिवन प्राणप्यारे ॥ कौ० माँ० ॥ भक्तिवश भावग्राहक निरन्तर, भावुकोंका हृदय मानि निज घर । बासकरते सदाबनि सुखारे ॥ कौ० माँ० ॥ हे सलोने सुभग प्राणजीवन; हे रसिकमणि रँगीले सरसमन । हे रसिकजन जिवनके सहारे ॥ कौ० माँ० ॥ हे मनोहर मधुर मंजुमूरति, हर्षाबके मोलबिन देखिसूरति । ना बिके अस कवन धीरधारे ॥ कौ० माँ० ॥ मुखप्रभा कोटिशशिको लजावन, हास्यमृदु प्रिय सुधासम सोहावन । नैनकीशैन तनसुधि बिसारे ॥ कौ० माँ० ॥ बैनकी माधुरी हिय लुभावन मीनसम प्रेमिजन मन फसावन । संत सुखप्रद सदा रूपधारे ॥ कौ० माँ० ॥ केशकुंचित बदनपर सोहावत, कंजपर मानो मधुकर लुभावत । दन्त दामिनिप्रभा छवि पसारे ॥कौ०माँ०॥ अबयही सबिनती हमारी, चरण पूजनकरौं नित सुखारी । मन वचन कर्म तन प्राण वारे ॥ कौ० माँ० ॥ अब न प्रभुको कभीमैं भुलाऊँ हियकमलमें सदा ही बसाऊँ । भावना ही में आरति उतारे ॥ कौ० माँ० ॥ देखि सीताशरण रूपसागर, खोगये होगये मानोबावर । अब न तजना कभी प्राणप्यारे॥ कौ० माँ० ॥ श्रीमुख बचन—

भावका भूखा हूँ मैं तो भावही बस सार है । भावसे मुझको भजै तो, भवसे बेड़ा पारहै ॥ भावबिन सूनीपुकारैं, मैं कभी सुनतानहीं । भावपूरितटेरही करती मुझे लाचारहै ॥ भावबिन सबकुछ देडाले, मैं कभी लेतानहीं । भावसे एकफूल भी दे तो मुझे स्वीकारहै ।। अन्नधन अरु वस्त्रभूषण, कुछ न मुझको चाहिये । आपही होजाय मेरा, पूर्ण यह सतकारहै ॥ जो हमीमें भावरखकर, लेतेहैं मेरीशरण । उनके अरु मेरेहृदयका, एकरहतातारहै ॥ भाव जिसजनमें नहीं, उसकी न कुछ चिन्ता मुझे । भाववाले भक्तका, भरपूर मुझपर भारहै ॥ बाँधलेते हैं मुझे, प्रियभक्त दृढ़जंजीर में । इसलिये इसभूमि पर, होता मेरा अवतार है ॥

* इति श्रीसीताराम तत्त्वप्रकाश ग्रन्थ सम्पूर्णम् *

श्रीब्रह्मदेव प्रिंटिंग प्रेस, श्री अयोध्या जी

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

१—श्री चारुशीलाबाग, श्री जानकीघाट, श्री अयोध्या जी (उ० प्र०)

२—बाबा श्री मनिरामदास जी की छावनी, श्री अयोध्या जी (उ० प्र०)

३—श्रीरामचरण संस्कृत महाविद्यालय, रामघाट अयोध्या (उ० प्र०)

४—श्री भक्तमाली जी का स्थान, श्री रामघाट, श्री अयोध्या जी (उ० प्र०)

५—म० श्री साकेत बिहारी दास जी, श्री मिथिला बिहारी कुञ्ज, ग्राम-पो० खजुहा, जिला-रीवां (म० प्र०)

६—श्री कलपसिंह अध्यापक, ग्राम फीरोजपुर डूँड़ा, पो०-मदनापुर जि०-शाहजहाँपुर (उ० प्र०)

७—श्रीसीताराम शरण (खीवंराज भाटी) नई सड़क, घंटाघर रोड सोजती गेट के बाहर, जोधपुर (राजस्थान)

प्रकाशक द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तकें—

१-भक्तों की विनय, २-भावनापुष्पांजली, ३-सूक्ष्म अष्टयम,
४-श्रीसीताकृपाकटाक्ष, ५-भावरत्नाकर, ६-मंगला झाँकी,
७-श्री सीताराम बचनामृत, ८-श्री सीतारामस्तवस्तोत्र,

(मुख्य पृष्ठ) मुद्रक :—साकेत प्रिंटिंग प्रेस, फैजाबाद।